अध्याय - नवम्

अध्याय - नवम्

- उपसंहार -

शोध-प्रबन्ध में विश्लेषित विभिन्न अध्यायों में किये गये विवेचन के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि -

अंग्रेज व्यापार करने के बहाने भारत में आये और यहां पर धीरे धीरे अपनी चतुरता, कूटनीतिज्ञता एवं जल सैन्य की ताकत तथा छल-कपट के बल पर अपना राज्य कायम कर सके। किन्तु जब यहां पर उन्होंने विभिन्न प्रकार के अत्याचार करने आरम्भ किये, तो शीघ्र ही उनके विरुद्ध 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया। यद्यपि उसमें अंग्रेजों को विजय मिली किन्तु उस स्वतंत्रता संग्राम की विभीषिका से अंग्रेज सदैव आतंकित रहे। भारत में भविष्य में अंग्रेजों के विरुद्ध 1857 जैसी क्रान्ति न होनें देने के लिये ब्रिटिश सत्ता ने कूटनीतिक चालें चलीं, ताकि भारतीय समाज छिन्न भिन्न होकर, कभी भी अपनी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित न कर सके।

उपर्युक्त लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने यहां पर 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपनायी। इस नीति के अन्तर्गत उन्होंने भारतीय समाज को धार्मिक, जातीय, क्षेत्रीय, सैनिक व प्रशासकीय आधार पर बांटने का प्रयत्न किया। हिन्दू व मुसलमानों को आपस में टकराने तथा हिन्दू समाज के विभिन्न वर्णों में परस्पर भेदभाव उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया।

इसके लिये सेना का पुनर्गठन धार्मिक तथा वर्गीय आधार पर किया गया। जैसे मुसलमान, जाट, सिक्ख, मराठा, राजपूत, गोरखा आदि रेजीमेन्ट बनाई गईं, ताकि उनमें आगे राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न हो सके।

भारत की राजनीतिक एकता को खण्डित करने के लिये 1857 के बाद के प्रारम्भिक

वर्षों में उन्होंने हिन्दुओं को प्रोत्साहित किया, क्योंकि उनकी धारणा थी कि 1857 की क्रान्ति में मुसलमानों की प्रभावी भूमिका रही थी ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद जब उसने अंग्रेज विरोधी नीति अपनानी शुरू की तो उन्होंने उसे हिन्दू जाति का संगठन कहकर मुसलमानों को उसके विरुद्ध भड़काकर, उन्हें यह भय दिखाकर कि तुम दूसरे दर्जे के नागरिक हो जाओगे, उन्हें हिन्दुओं के प्रति आशंकित कर दिया । उनकी इस प्रकार की नीति ने भारत में साम्प्रदायिक राजनीति की आधारशिला रखी । कभी उन्होंने हिन्दुओं को महत्व दिया तो कभी मुसलमानों को । जैसे 1892 में लार्ड मिन्टो ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि उन्हें पृथक प्रतिनिधित्व दिया जावेगा । वहीं 1900 में संयुक्त प्रान्त के न्यायालयों में प्रार्थना पत्र, अपीलें आदि करने में उर्दू की अनिवार्यता समाप्त कर दी । पुनः 1905 में बंगाल का विभाजन तथा 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना करवा कर मुस्लिमों को प्रोत्साहित किया । फिर 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करके मुसलमानों की भावनाओं को आहत किया गया । इस प्रकार की नीतियों के कारण ही अन्ततोगत्वा भारत की अखण्डता को खतरा उत्पन्न हुआ ।

पृथकता की भावना इतनी न बढ़ती अगर 1920 में भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस पर महात्मा गांधी का पूर्ण रूप से वर्चस्व स्थापित न हो जाता । उनकी धारणा थी कि बिना हिन्दू मुस्लिम एकता के स्वराज्य नहीं मिल सकता । अतएव उन्होंने जरूरत से ज्यादा मुसलमानों के प्रति उदार नीति अपनाई । यहां तक कि मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये उन्होंने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन करने का भी निश्चय किया, जो कि पूर्णतः एक धार्मिक प्रश्न था । इस आन्दोलन का संचालन भी पूर्ण रूप से कट्टरतावादी मुल्ला एवं मौलवियों के हाथ में था । गान्धी जी के इस विचार का विरोध तत्कालीन नेताओं ने, यहां तक कि जिन्ना ने भी किया था और गान्धी जी को इसके लिये चेतावनी भी दी थी कि बाद में उन्हें इसके लिये पछताना पड़ेगा किन्तु गांधी जी पर तो उस समय हिन्दू मुस्लिम एकता का ऐसा भूत सवार था कि उन्होंने इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया । इस प्रकार उन्हीं के कारण भारतीय राजनीति में धर्म का प्रवेश हुआ, जिसके दुष्परिणाम अभी तक हम लोग भोग रहे हैं ।

उस समय के कांग्रेस नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता का अर्थ, मुस्लिमों की जायज-नाजायज मांगों को स्वीकार करने से लगाया । इसके लिये उन्होंने बहुसंख्यक हिन्दू समाज, उसके धर्म आदि की उपेक्षा की । जैसे जब बंगाल का विभाजन किया गया तो इसके विरुद्ध वन्दे मातरम् का जयघोष करके बंगाल की जनता इस नारे के पीछे एकजुट होकर खड़ी हो गई । परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को बंगाल का विभाजन रद्द करना पड़ा । किन्तु इसी के साथ ही अंग्रेजों ने अपनी विभेदकारी नीति से देश के मुसलमानों में एक नया जहर प्रवेश करा दिया । उनका कहना था कि बंगाल का विभाजन उन्होंने इसलिये किया है ताकि मुसलमानों को उनका खोया हुआ शासन पुनः मिल जाय और इस प्रकार देश की एकता को खण्डित करने के लिये धार्मिक आधार पर मुस्लिम अलगाववाद को जन्म दिया । कांग्रेस अंग्रेजों के इस कुचक्र में फंस गई और इसीलिये उसने 1909 के अधिनियम में रखे गये पृथकतावादी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विरोध नहीं किया । हिन्दू मुस्लिम समस्या को सुलझाने के लिये श्री अरविन्द के सुझाव को भी कांग्रेस ने नहीं माना । उन्होंने कहा कि "हमें एक बात पर विश्वास है, हिन्दू मुस्लिम एकता राजनीतिक समझौते या खुशामद के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती .....हमें परस्पर परिचय और सहानुभूति के द्वारा गलतफहमी के कारणों को हटाने का प्रयास करना चाहिये ।"[1] कांग्रेस ने अरविन्द की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया अपितु 1916 में लखनऊ समझौते के माध्यम से मुसलमानों को अलग मताधिकार और निर्वाचन का अधिकार दिया । फिर 1919 के अधिनियम के तहत दिये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का हल्का सा विरोध करते हुए, चुनावों में भाग लिया । 1920 में खिलाफत आन्दोलन में सम्मिलित होकर, कांग्रेस ने मुस्लिम तुष्टीकरण की पराकाष्ठा करते हुए, धार्मिक आधार पर मुसलमानों का समर्थन खरीदने का सौदा किया । 1920 से लेकर 1947 तक धार्मिक आधार पर मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति ज्यों ज्यों अपनाई गई त्यों त्यों राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर प्रश्न चिन्ह लगता चला गया, जिसका दुःखद परिणाम हमें 1947 के भारत विभाजन और पाकिस्तान के जन्म के रूप में देखने को मिलता है । यही तुष्टीकरण की नीति वह बिन्दु है जहां लाखों वर्षों से चली आ रही भारत की एकता और अखण्डता को मजहबी राष्ट्रवाद ने पराजित कर दिया । जिन्ना जीत गये और गान्धी हार गये । कांग्रेस ने इसी तुष्टीकरण को सच्ची विचारधारा कहा तथा राष्ट्रवादी विचारों को संकुचित मनोवृत्ति घोषित किया, जो आज तक चला आ रहा है ।

1- शुक्ल, भानुप्रताप - भारतीय मुस्लिम मुख्य धारा का आह्वान, विकास पेपर बैक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992, पृ. 41.

महात्मा गांधी के हठी स्वभाव के कारण भी वह भारत को विभाजन की ओर ले गये । उदाहरणार्थ, खिलाफत आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन से जोड़ने का सभी ने विरोध किया था किन्तु गांधी जी ने किसी की भी नहीं मानी और यहीं से जिन्ना उनके कट्टर विरोधी होकर, बाद में मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये । यदि गान्धी ने जिन्ना एवं अन्य नेताओं की बात मान ली होती तो जिन्ना कांग्रेस न छोड़ते और अगर जिन्ना कांग्रेस न छोड़ते तो भारत का विभाजन भी नहीं होता । उनके जिद्दी स्वभाव का दूसरा उदाहरण हमें 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ करने के प्रस्ताव को लेकर देखने को मिलता है । इस प्रस्ताव का कांग्रेस में नेहरू, मौलाना आजाद आदि ने विरोध किया था और कहा था कि इससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी प्रतिष्ठा में कमी आयेगी । जो देश इस समय इंग्लैण्ड पर हमें स्वतंत्र करने के लिये दबाव डाल रहे हैं वे हमसे दूर हो जायेंगे । गांधी जी ने उनकी बात गम्भीरता से समझने के स्थान पर अपनी जिद्द के कारण उन्हें कांग्रेस छोड़ देने को कहा । वास्तव में इस आन्दोलन के भयंकर परिणाम निकले । प्रथम तो कांग्रेसी नेताओं के जेल में बन्द कर देने के कारण जिन्ना को राजनीति का मैदान साफ मिला और उसने यह समय लीग को सुसंगठित करने में लगाया । दूसरे इससे जो अंग्रेज कांग्रेस के पक्षधर थे, वे भी उससे दूर चले गये क्योंकि इस समय जर्मनी से युद्ध के कारण, उनके इस राष्ट्रीय संकट को कांग्रेस ने आन्दोलन चलाकर और बढ़ा दिया था । अतएव उनका भी लीग के पक्ष में चला जाना स्वाभाविक ही था । यह सब गांधी जी की हठधर्मी का ही फल था ।

तीसरा उदाहरण हम उनकी हठधर्मी का 1944 में देखते हैं - मौलाना आजाद[1] एवं पटेल के रोकने पर भी उन्होंने जिन्ना से राजाजी के फार्मूले के आधार पर बातचीत की, जिसका कुछ भी परिणाम नहीं निकला । उल्टे मुसलमानों में जिन्ना की प्रतिष्ठा बढ़ी और वे अपने मन में पाकिस्तान की सम्भावना संजोने लगे ।

1- मौलाना आजाद - इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृष्ठ 93.

महात्मा गांधी हीन भावना से भी ग्रसित थे । नेहरू परिवार से वह दबे हुए थे । इसलिये उन्होंने जानते हुए भी कुछेक गलत निर्णय लिये । जिसका परिणाम भारत विभाजन के रूप में हमारे सामने आया । नेहरू परिवार के प्रति सम्मान की भावना रखने के कारण ही जब जब जवाहरलाल नेहरू एवं पटेल के बीच चुनाव का प्रश्न आया, तो उन्होंने नेहरू जी को ही चुना । फिर चाहे वह कांग्रेस के अध्यक्ष का प्रश्न रहा हो या अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री का प्रश्न ? एक कुशल व व्यवहारिक कूटनीतिज्ञ पटेल के स्थान पर उनके द्वारा व्यवहारशून्य व अकुशल राजनीतिज्ञ को चुनने का कारण उनकी हीन भावना ही थी । अगर कांग्रेस अध्यक्ष व अन्तरिम सरकार का नेतृत्व 1946 में पटेल ने किया होता तो परिणाम दूसरा ही रहता । इस बात को मौलाना आजाद ने भी बाद में स्वीकार किया था ।

उनकी इसी जिद के कारण जब उन्होंने मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति न छोड़ी तो उस समय के कुछ प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने कांग्रेस छोड़कर, हिन्दू हितों की रक्षा के लिये हिन्दू-महासभा को प्रोत्साहन दिया तथा डॉ. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) की स्थापना की । इन संगठनों द्वारा हिन्दू हितों की बात करने के कारण मुसलमानों में स्वयं को असुरक्षित महसूस करने की भावना ने जन्म लिया और वे अधिक से अधिक संख्या में लीग के समर्थक बन गये । जो थोड़े बहुत राष्ट्रवादी मुसलमान बचे थे, और जो लीग की मांग को गलत भी समझते थे, उन्होंने भी तटस्थ रहना स्वीकार किया । इस प्रकार 1946 के चुनावों में गांधी जी की नीति के कारण ही लीग को आशातीत सफलता मिली । अब उसने मुसलमानों की ओर से बोलने का अपना एकमात्र हक का दावा सशक्त ढंग से संसार के सामने सिद्ध कर दिया था ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं, जिनमें गांधी, नेहरू, पटेल, आजाद, राजगोपालाचारी, भूलाभाई देसाई आदि ने कभी भी चतुर राजनीतिज्ञ की भूमिका नहीं अपनाई । विशेषकर गांधी व नेहरू ने लीग की बातों को कभी भी गम्भीरता से लेकर, उसकी वास्तविकता समझने की कोशिश नहीं की । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति, कूटनीतिकता व चतुरता की कमी थी । केवल पटेल ही व्यावहारिक राजनीतिज्ञ थे । कांग्रेस में भी इस समय दो

विचारधारायें थीं । एक विचारधारा पाश्चात्य विचारों से प्रभावित थी जिसका प्रतिनिधित्व नेहरू कर रहे थे । दूसरी विचारधारा भारतीय संस्कृति से प्रभावित थी, जिसका प्रतिनिधित्व पटेल करते थे । किन्तु कांग्रेस की विकृत धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा के कारण पटेल की विचारधारा का महत्व कांग्रेस में कम था । नेहरू, गांधी आदि में दूरदर्शिता का अभाव था । वह कोरे आदर्शवाद के भ्रम जाल में फंसे होने के कारण लीग एवं जिन्ना की द्विराष्ट्र या पाकिस्तान की मांग को कोरी बकवास समझते रहे । मौलाना आजाद का प्रयत्न यह रहता था कि जिन्ना जितना अंग्रेजों से मुसलमानों को लाभ दिलाये, उससे अधिक लाभ वे मुसलमानों को कांग्रेस से दिलवा दें । ताकि तुष्टीकरण के माध्यम से उनका नेतृत्व दोनों में (कांग्रेस व मुसलमानों) बरकरार बना रहे । उपरोक्त सन्दर्भ में हम कांग्रेसी नेताओं द्वारा लिये गये कुछ प्रसंग देखें । यथा -

क्रिप्स मिशन -

1942 में क्रिप्स मिशन भारत में आया और उन्होंने समस्या को सुलझाने के लिये कुछ सुझाव दिये थे । इनमें से एक था कि मुस्लिम लीग की पृथक पाकिस्तान की मांग को इस रूप में स्वीकार कर लिया था कि भारत संघ से पृथक मुस्लिम राज्यों का निर्माण किया जा सकेगा । क्रिप्स मिशन योजना पर कांग्रेसी नेताओं ने विचार कर उसे अस्वीकृत कर दिया । किन्तु इस अस्वीकृति का कारण यह नहीं बताया कि इससे भारत की एकता खण्डित होती है । इसके विपरीत यह कहा कि इसमें भारतीयों को रक्षा दायित्व सौंपने की बात नहीं कही गई है.। जबकि जिन्ना ने मुस्लिम लीग से कहलवाया कि इसमें स्पष्ट रूप से पाकिस्तान की मांग को स्वीकार नहीं किया गया है, अतएव लीग इसे स्वीकार नहीं कर सकती । इस तरह जिन्ना द्वारा, स्पष्ट रूप से पाकिस्तान की मांग न मानने के कारण, अस्वीकृत करने की बात कही गई थी । वहीं दूसरी ओर भारतीय कांग्रेस के नेता जो अपनी लाश पर पाकिस्तान बनने की बात कहते थे, वे क्रिप्स योजना से भारत की अखण्डता नष्ट होती है, यह कारण अस्वीकृति का न बता सके । इससे उनका बौद्धिक दिवालियापन झलकता है ।

सी.आर. फार्मूला -

इसमें भी पाकिस्तान की मांग स्वीकार की गई थी और इसी आधार पर जब गांधी ने

जिन्ना से बात की, तो स्वाभाविक रूप से पाकिस्तान की मांग का कांग्रेस के एक वर्ग द्वारा समर्थन कर दिया गया था । यही बात मुस्लिम लीग कहती थी ।

देसाई-लियाकत फार्मूला -

इस फार्मूले को भी गांधी जी का समर्थन प्राप्त था । इसमें कांग्रेस व लीग को बराबर प्रतिनिधित्व देने की बात मान ली गई थी । बाद में लीग इसी बराबरी की मांग हमेशा ही करती रही थी । इस तरह इन दोनों ही प्रस्तावों से पाकिस्तान की मांग को बल मिलता रहा । इसे कांग्रेसी नेताओं की नादानी ही कहा जा सकता है ।

वेवल योजना -

वेवल योजना में अन्तरिम सरकार के गठन के लिये कुल चौदह सदस्य मनोनीत होने थे । इसका प्रतिनिधित्व इस प्रकार होना था - 7 मुसलमान, 2 सवर्ण हिन्दू, 2 दलित हिन्दू, । सिक्ख, । पारसी, । ईसाई । इसके लिये शिमला में सम्मेलन हुआ जिसमें कांग्रेसी नेताओं ने कांग्रेस के द्वारा मुसलमान मनोनीत करने के प्रश्न पर तो लीग से झगड़ा किया किन्तु मुसलमानों की, जिनकी जनसंख्या हिन्दुओं से बहुत कम है, उन्हें बराबर का प्रतिनिधित्व देने की बात का विरोध न कर, यहां भी अपनी अदूरदर्शिता का परिचय दिया ।

कैबिनेट मिशन -

मंत्रिमण्डलीय मिशन की योजना पर भी कांग्रेस के इन नेताओं का बड़ा विचित्र रवैया देखने को मिलता है । मौलाना आजाद ने किसी नेता से सलाह किये बिना ही पेंथिक लॉरेन्स को यह आश्वासन दे दिया कि "वह कांग्रेस को राष्ट्रवादी मुस्लिम को मंत्रीमण्डल में शामिल न करने के लिये राजी कर लेंगे । उनका यह पत्र क्रिप्स द्वारा गांधी जी को दे दिया गया । जब गांधी जी ने मौलाना से इस विषय में पूंछा तो मौलाना ने झूठ बोल दिया कि उन्होंने पत्र नहीं लिखा । इसकावर्णन सुधीर घोष ने इस प्रकार किया है - "जिस समय गांधी जी ने मौलाना से पत्र के बारे

में पूँछा तो इसे राजकुमारी व प्यारेलाल ने भी सुना ।"[1] दूसरी ओर नेहरू जी ने एक दूसरा ही बयान दिया । इस प्रकार ये लोग परस्पर विरोधी विचार प्रकट करते रहे । उसके स्थान पर इन नेताओं ने अगर लीग की विभाजन की मांग को गम्भीरता से लिया होता, तो कैबिनेट मिशन योजना पर भली भांति विचार कर उसे स्वीकार कर लेते । किन्तु अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता की कमी के कारण वे न तो पाकिस्तान की योजना को स्वीकार ही करते थे और न दृढ़ इच्छा शक्ति से उसका विरोध करते थे । इसी उहापोह में जब ये नेता फंसे थे, तभी साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका को देखकर ये डर गये और उन्होंने माउन्टवेटन की भारत विभाजन की योजना को स्वीकार कर लिया ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जैसे ही महात्मा गांधी का 1920 में कांग्रेस पर वर्चस्व स्थापित हुआ, वैसे ही उनकी ढुलमुल नीति, धर्म को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ना, धर्मनिरपेक्षता की विकृत अवधारणा, मुस्लिम तुष्टीकरण, जिद्दी स्वभाव, हीन भावना आदि के कारण वे देश को विभाजन की ओर ले गये । बची खुची कसर नेहरू जी, मौलाना आजाद, राजगोपालाचारी, भूलाभाई देसाई जैसे नेताओं ने पूरी कर दी । वास्तविक दृष्टि से देखें तो 1947 का भारत विभाजन किसी धर्म या जिन्ना के कारण नहीं हुआ, जैसा कि कहा जाता है, अपितु तत्कालीन नेताओं की अदूरदर्शिता, जल्दबाजी, स्वार्थलोलुपता, आत्मविश्वास की कमी तथा भावी पीढी पर विश्वास न कर सकने के कारण हुआ । उन्होंने जानबूझकर लगातार स्थिति को हाथ से निकलते जाने दिया । वे यथार्थ से दूर रहकर अपनी जिद पर भी अड़े रहे और जब स्थिति पूर्णतः उनके हाथ से निकल गई तब अपने समस्त सिद्धान्तों एवं उद्घोषणाओं को भुलाकर, एकदम उसके सामने नतमस्तक भी हो गये ।

*****

1- सुधीर घोष - गान्धी'ज एमीसरी से हो.वि. शेषाद्रि ने अपनी पुस्तक - और देश बंट गया में पृ. 175 पर उद्धृत किया ।